Research Innovator: International Multidisciplinary Peer-Reviewed Journal
ISSN: Print: 2395-4744 www.research-innovator.com ISSN: Online: 2348-7674

विदेश–नीति की अवधारणा मनमोहन सिंह के कार्यकाल के संदर्भ में

Dr. Himanshu Yadav

Department of Political Science, University of Allahabad, (U.P.) India

Dr. Pankaj Kumar

Associate Professor, Department of Political Science, University of Allahabad, (U.P.) India

सारांश

विदेश–नीति की अवधारणाः प्रत्येक देश अपने राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा एवं अभिवृद्धि के लिए कुछ नीतियाँ निर्धारित करता है। वह नीति जिसका सम्बन्ध अन्य देशों के आचरण तथा उनके साथ सम्बन्धों से होता है, विदेश नीति कहलाती है। प्रत्येक राष्ट्र यह प्रयास करता है कि वह अपने हितों की सुरक्षा के लिए अन्य राष्ट्रों के व्यवहार को अपनी रूचि के अनुरूप परिवर्तित करवाए। कभी–कभी स्वयं के व्यवहार में भी परिवर्तन करना पड़ जाता है। आज विश्व में 190 देशों से अधिक स्वतंत्र सम्प्रभु राष्ट्र हैं। इनमें से अधिकांश अन्य देशों पर निर्भर रहते हैं। राज्यों की पारस्परिक निर्भरता निरंतर बढ़ती जा रही है इसीलिए विदेश नीति के महत्व में भी वृद्धि हुई है।

आज कोई भी देश आत्म निर्भर नहीं है। राज्यों की एक दूसरे पर निर्भरता बढ़ती जा रही है, एक दूसरे राज्य पर यह निर्भरता आज जिस सीमा तक पहुँच गयी है, उससे पहले भी राज्यों में कई प्रकार (प्राचीन काल में) के आपसी सम्बन्ध हुआ करते थे जिसमें व्यापारिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक सम्बन्ध निभ्रांत रूप से सम्मिलित थे। व्यक्तियों की भाँति, राज्य भी अपने हितों की अभिवृद्धि का निरंतर प्रयास करते हैं। राज्यों के इन हितों को राष्ट्रीय हित कहते हैं। प्रत्येक राज्य अपने राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा के लिए विदेश नीति का निर्धारण करता है। राज्यों की सरकारें यह निश्चित करती हैं, कि विदेशों के साथ किस प्रकार के सम्बन्ध रखे जाएं जिसके लिए कुछ कार्य करने होते हैं और कुछ अन्य कार्यों से दूर रहना पड़ता है। इस प्रकार एक सरकार दूसरी सरकारों के प्रति अपना आचरण तय करती है।

बदलते अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में निर्धारित आन्तरिक नीतियों के सफल क्रियान्वयन के लिए कुशलतापूर्वक अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण को अपने अनुकूल बनाने की रणनीति ही विदेश नीति है। किसी भी राष्ट्र की विदेशनीति मुख्य रूप से कुछ सिद्धान्तों एवं उद्देश्यों का समूह होता है जिसके माध्यम से वह राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों के साथ संबंध

स्थापित करके उन उद्देश्यों की पूर्ति करने हेतु कार्यरत रहता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की गतिशीलता के दो आधार स्तम्भ माने गये हैं– राजनय और विदेशनीति। विदेशनीति का केन्द्रीय विषय राष्ट्रहित है। दूसरे शब्दों में विदेशनीति राष्ट्र–राज्य के राष्ट्रीय हितों को अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर प्रतिबिम्बत करती है।

पी0 डी0 कौशिक के अनुसार, ''अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एक बड़ी सीमा तक विश्व के विभिन्न राष्ट्र–राज्यों द्वारा अपनायी गयी विदेशनीति का योग है।''[1]

डॉ0 महेन्द्र कुमार के अनुसार, ''राष्ट्रीय हितों की विचार धारा से निर्धारित विदेशी संबंधों में उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अपनाया गया सुविचारित कार्यक्रम ही विदेशनीति है।''[2] किसी राज्य की विदेश नीति का मूल निर्धारक तत्व राष्ट्रहित होता है।''

विदेश नीति का उद्देश्य विदेशी संबंधों का ऐसी नीति से संचालन करना है जिससे राष्ट्रहित की सिद्धि यथासम्भव अधिक से अधिक अनुकूल रूप से होने की गारण्टी रहे। विदेशनीति के निर्धारण में बाह्य एवं आन्तरिक परिस्थितियाँ अन्तिम रूप से जिम्मेदार होती है। एक राष्ट्र की विदेशनीति उसके विदेशी सम्बन्धों का सार होती है।[3]

जार्ज मोडेलस्की विदेशनीति की परिभाषा करते हुऐ लिखते हैं, ''विदेशनीति उन क्रियाकलापों का समुच्चय है जो किसी समुदाय ने अन्य राज्य के व्यवहार बदलने के लिए अपने क्रियाकलापों को अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तित करने के लिए विकसित किया है।[4] जार्ज मोडेलस्की के शब्दों में संशोधन करते हुये डा0 महेन्द्र कुमार लिखते हैं, ''यह कहना ठीक नहीं होगा कि जो व्यवहार बदला नहीं जा सकता, जो परिवर्तन अनुकूल न हो वह विदेशनीति के दायरे में नहीं आता बल्कि अपने घरेलू परिस्थितियों के अनुकूल राज्यों के व्यवहार में समायोजन करने की नीति विदेशनीति कहलाती है।''[5]

यह आवश्यक नहीं है कि अन्य राज्यों के व्यवहार में परिवर्तन करना सदा अपेक्षित हो। बहुधा आवश्यकता इस बात की होती है कि अन्य देशों के व्यवहार को अपरिवर्तनशील बनाये रखने का प्रयास किया जाय। कभी–कभी किसी देश के लिए स्वयं अपने व्यवहार में परिवर्तन या संशोधन करना भी आवश्यक हो सकता है। अतः विदेशनीति का उद्देश्य अन्य राज्यों के व्यवहार को नियंत्रित करना होता है न कि उनमें केवल परिवर्तन करवाना। नियंत्रण का अर्थ होता है कि अपने हितों की सुरक्षा के लिए अन्य राज्यों के व्यवहार में अपेक्षित सुधार किया जाय। शीतयुद्ध के दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका और भूतपूर्व सोवियत संघ दोनों का प्रयास होता था कि अन्य राज्यों के व्यवहार में परिवर्तन करवा कर अपने गुट (ब्लॉक) के सदस्य की संख्या में अधिकतम वृद्धि की जाय।

उसी समय भारत ने भी निरन्तर प्रयास किया कि अधिकतम देशों के व्यवहार को इस प्रकार नियंत्रित किया जाय जिससे की

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन सशक्त और प्रभावी बना रहे। साम्यवाद की गति को रोकना अमेरिकी विदेश नीति का एक प्रमुख उद्देश्य था।

अमेरिका ने परमाणु अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए भारत को मनाने का असफल प्रयास किया।

इस तरह राज्यों के व्यवहार में परिवर्तन का प्रयास सदा सफल नहीं होता। इसका अर्थ यह हुआ कि कुछ उद्देश्यों को निश्चित करना और उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अन्य देशों के व्यवहार में परिवर्तन करवाने का प्रयास करना ही विदेशनीति है। डा0 महेन्द्र कुमार लिखते हैं कि इस आचरण के अध्ययन को मोटे तौर पर विदेश नीति का विषय वस्तु कहा जा सकता है। प्रत्येक राज्य का व्यवहार अन्य देशों के व्यवहार को प्रभावित करता है। अपने राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक देश अन्य देशों के गतिविधियों का अधिकतम लाभ उठाना चाहता है। इस प्रकार विदेश नीति का उद्देश्य यह होता है कि अन्य देशों के व्यवहार में अपने हितों के अनुसार परिवर्तन करवाने का प्रयास करें।[6]

विदेशनीति का एक पहलू यह भी है कि वह नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों ही हो सकती है।

विदेशनीति का संबंध परिवर्तन और यथास्थिति दोनों से है इसका एक और आयाम यह भी है कि प्रत्येक देश स्वेच्छा से यह निश्चित करता है कि अन्य देशों के साथ संबंध में कहाँ तक भूमिका निभा सकता है।[7]

फौलिक्स ग्रॉस ने तो यहाँ तक माना है कि किसी राज्य के साथ कोई संबंध न रखने का निर्णय भी एक प्रकार की विदेशनीति है।[8]

मार्गेन्थाऊ के अनुसार शक्ति के रूप में परिभाषित राष्ट्रहित ही विदेशनीति है।[9] विदेशनीति से रहित राष्ट्र पतवार–विहीन जहाज के समान है। राष्ट्रीय सुरक्षा, राष्ट्रीय विकास और विश्व व्यवस्था विदेशनीति के तीन घटक है। इन परिभाषाओं के समान ही रेनॉल्डज का मत है कि विदेशनीति का अर्थ एक राज्य के विभिन्न सरकारी विभागों द्वारा निर्धारित उन गतिविधियों की सीमाओं से है, जिनके माध्यम से वे अपनी संभावित राष्ट्रीय हितों की पूर्ति हेतु अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से जुड़े अन्य राज्यों के साथ कार्यरत रहते हैं।[10]

लगभग इसी प्रकार का मत अन्य विशेषज्ञों द्वारा भी प्रकट किया किया है। परन्तु लर्चे एवं सैद ने इन परिभाषाओं को अधिक विस्तृत करके विदेशनीति के तीन प्रमुख पहलुओं को इसी परिभाषा के अन्तर्गत समेटा है। उनके अनुसार यह तीन प्रमुख पहलू हैं–

1. विदेशनीति उन सामान्य सिद्धान्तों से संबंधित है जिनके द्वारा राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण से संबंधित अपनी प्रतिक्रियाओं को निर्धारित करता है।

2. विदेशनीति से निर्णय और कार्यवाही दोनों ही जुड़े हैं जिसमें शायद निर्णय एक महत्वपूर्ण कारक होता है।
3. विदेशनीति में सामान्यतः संसाधनों के प्रति वचनबद्धता तथा जोखिम की मान्यता अथवा दोनों का समावेश होता है।[11]

विदेशनीति के प्रमुख लक्ष्यों के बारे में अलग–अलग विशेषज्ञों के अलग–अलग विचार हैं। इस संदर्भ में जे0 बंधोपाध्याय इन्हें राष्ट्रीय हितों के तीन मुख्य तत्व के रूप में देखते हैं। वे हैं – राष्ट्रीय सुरक्षा, राष्ट्रीय विकास तथा विश्व व्यवस्था।

मनमोहन सिंह के काल की विदेश नीतिः

भारतीय संसद के चुनाव में राजग सरकार की नाटकीय पराजय व संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की जीत हुई। सोनिया गाँधी के प्रधानमंत्री पद अस्वीकार कर देने के पश्चात् विख्यात अर्थशास्त्री डॉ0 मनमोहन सिंह को जो नरसिंहा राव के मंत्रिमण्डल में वित्त मंत्री रह चुके थे को प्रधानमंत्री चुना गया।

जहां तक विदेश नीति का सम्बन्ध है मनमोहन सिंह के विचार में उल्लेखनीय निरन्तरता रही है, खासतौर पर चीन और पाकिस्तान सरीखे महत्वपूर्ण पड़ोसियों और अमरीका जैसी बड़ी ताकतों के साथ सम्बन्धों के मामलों में मनमोहन सिंह के उनके साथ बेहतर रिश्तें बनाने और उनको नए स्तर तक ले जाने की पहले वाली नीति को आगे बढ़ाया। सरकार के सामने नेपाल व श्रीलंका की गम्भीर समस्याएं भी थी।

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने न केवल शांति वार्ता के प्रति अपनी सरकार की चलती आ रही प्रतिबद्धता की घोषणा की बल्कि शांति प्रक्रिया को तेज करने के प्रयास भी किए। मनमोहन सिंह के विदेश नीति के उपलब्धियों को हम निम्न बिन्दु रूप में देख सकते हैं –

(क) पाकिस्तान के साथ सम्बन्धों को एक नया आयाम देते हुए शांति – प्रक्रिया को तेज करने व आगे बढ़ाने का काम किया।

(ख) सार्क (दक्षेस) के मंच पर भारत की एक जोरदार उपस्थिति हुई। जनवरी 2004 में इस्लामाबाद में हुए 12वें सार्क सम्मेलन में आतंकवाद के तमाम रूपों और अभिव्यक्तियों की निन्दा की गयी। 2006 के ढाका सम्मेलन (13वां) में आतंकवाद से लड़ने की वचनबद्धता को दोहराया गया।

(ग) हवाना में गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन के दौरान मुशर्रफ व सिंह की मुलाकात जिसका उद्देश्य शांति प्रक्रिया में नई जान फूँकने का प्रयास।

(घ) भारत व चीन के बीच आपसी सम्बन्धों को एक नये आयाम देने का प्रयास किया गया। हू – जिन्ताओं की वर्ष 2006 में भारत की यात्रा से भारत – चीन सम्बन्धों को एक नई उचाईयाँ मिली हैं।

(ङ) सीमा विवाद के प्रश्न पर भारत व चीन दोनों देशों के प्रधानमंत्री ने इस पर सहमति जताई कि सीमा प्रश्न का जल्दी निपटारा होने से न केवल दोनों देशों के बुनियादी हितों को लाभ होगा बल्कि आर्थिक उदारीकरण के इस युग में उनकी लाभदायी भागीदारी को अधिक शक्ति एवं गतिशीलता प्राप्त होगी।

(च) संयुक्त राष्ट्र संघ में सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्य बनने के प्रयास पर भी चीन ने खुशी जाहिर की है।

(छ) भारत व रूस के बीच सम्बन्धों के मजबूती व अधिक व्यापक बनाने के प्रयास किये गये।

(ज) भारत व अमरीका के सम्बन्धों में सबसे महत्वपूर्ण समझौता जिसे 123 परमाणु समझौता भी कहा गया एक महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है।

भारत अमरीका परमाणु समझौतों के बाद अपने यूरोपीय यात्रा के दौरान वक्तव्य में डा0 मनमोहन सिंह ने कहा कि, ''हमें विश्व की वास्तविकताओं को देखना चाहिए। हम असमान शक्ति के विश्व में रह रहे हैं। परिस्थति की सच्चाइयों को हम झुठला नहीं सकते। अपने हितों को आगे बढ़ाने के लिए हमें उसी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को अपनाना पड़ेगा जो मौजूद है।''[12]

भारत के साथ अपने सम्बन्धों के स्तर को बढ़ाने के मामलों में वांशिगटन के निर्णय के पीछे असली कारण केवल भारत की महत्वपूर्ण स्थिति हीं नहीं था अपितु यह था कि सारी दुनिया में भारत को अब एक उभरती हुई शक्ति के रूप में देखा जा रहा था खास तौर पर आर्थिक क्षेत्र में। अमरीकी और विश्व जनमत चीन और भारत की तेजी से प्रगति कर रही अर्थ व्यवस्था से भी चिंतित था।

भारत पर अंग्रेजों की विजय ने भारतीय समाज की कमजोरियों एवं गिरी हुई हालत को स्पष्ट कर दिया अतः कुछ विचारशील और बुद्धिमान भारतीयों ने देश की दुर्दशा, पिछड़ेपन और विदेशियों के समक्ष अपनी पराजय के कारणों की खोज–बीन शुरू की। पश्चिम के वैज्ञानिक ज्ञान, बुद्धिवाद के सिद्वान्त और मानवतावाद का इन प्रबुद्ध भारतीयों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। वे इस नये ज्ञान एवं सिद्धातों की सहायता से अपने समाज को भलाई में लग गये।

अंग्रेज व्यापारियों के साथ इसाई पादरी एवं धर्म–प्रचारक भी भारत आए थे। अंग्रेजी शासन की स्थापना के बाद उनकी गतिविधियाँ जोर पकड़ती गई। अन्य कार्यों के अलावा उन्होंने दो ऐसे कार्य किये जिनसे भारतीय पुर्नजागरण को काफी बल मिला। पहला उनके प्रयत्नों से देश में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार हुआ जिससे पाश्चात्य ज्ञान एवं विचार भारतीयों तक पहुँचने लगे। और उनमें जागरण की चिंतनधारा फूटने लगी। दूसरे जब ईसाई मिशनरियों ने भारतीयों को ईसाई बनाना शुरू किया तो इसके विरूद्व हिन्दुओं की तीखी प्रतिक्रिया हुई और कुछ हिन्दू अपने धर्म की रक्षा के प्रयत्न में जुट गये।

भारतीय सुधारकों को ईसाई मिशनरियों की धर्म प्रचार प्रणाली से भी प्रेरणा मिली। यही कारण था कि 19वीं शताब्दी के धर्म सुधार का कार्य ईसाई मिशनों की तरह ही संगठनों के माध्यम से शुरू हुआ। राजीव गांधी ने भी बार–बार यह स्पष्ट किया कि भारत की बहुलवादी संस्कृति की अपनी विशिष्टता है जिसे पश्चिमी चश्मे से नहीं देखा जा सकता। पश्चिमी दृष्टि केवल ईसाई दर्शन पर आधारित है जबकि भारत में सभी धर्मों का समान आदर है।

भारत में उदारवाद के उद्भव एवं विकास तथा पुनर्जागरण लाने में उन कतिपय यूरोपीय विद्वानों का भी हाथ था। जो भारत की प्राचीन सांस्कृतिक उपलब्धियों से प्रभावित थे। वे चाहते थे कि भारत का वह गौरवमय अतीत पुनः वापस आये और भारत का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास हो।

इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आन्दोलन का भारत की विदेश–नीति के निर्माण के इतिहास में विशेष स्थान है। यद्यपि इस आन्दोलन की शुरूआत आधुनिक पश्चिमी संस्कृति के सम्पर्क से हुई थी, लेकिन इसने पश्चिमी विश्व की ही एक बड़ी विरासत की समाप्ति का मार्ग प्रशस्त किया।

भारत में संस्कृति के संघर्ष की अवधारणा अंग्रेजों द्वारा सन् 1857 के बाद पैदा की गई। सांप्रदायिक और धार्मिक आधार पर अंग्रेजों द्वारा हिन्दू–मुसलमानों की जनसंख्या की गणना सन् 1871 में पहली बार की गई। इसी सोची–समझी साजिश का फायदा दोनों धर्मो की सांप्रदायिक शक्तियों ने उठाया।

धर्म के आधार पर विभाजन का ही परिणाम था कि भारतीय राजनीति स्वतंत्रता के बाद हिन्दू–मुस्लिम के बीच विभाजन के आधार पर चलती रही। हिन्दू कट्टरवाद तथा इस्लामी आतंकवाद इन्हीं राजनीति का परिणाम है। इस्लामी आतंकवाद राजनैतिक–धार्मिक आन्दोलन नहीं, यह सीमित लक्ष्यों वाला एक अभियान है। अन्याय के प्रतिरोध से ज्यादा यह नफरत का सैलाब है। जिसे तरह–तरह से समझने को कोशिश जा रही है, जिसमें यह भुला दिया गया है कि इसका विस्फोट मूलतः किन कारणों से हुआ। इसके पीछे पश्चिमी–मध्य एशिया में मौजूद खनिज पेट्रोल और प्राकृतिक गैसों के वह भंडार रहे है, जिनसे अमेरिका और पश्चिमी देशों के सघन आर्थिक स्वार्थ जुड़े हैं पर आर्थिक स्वार्थो के संघर्ष को नेपथ्य में डालकर संघर्ष के कारणों को सभ्यता और धर्म से जोड़ दिया गया। अमेरिका ने इसे 'सभ्यताओं का संघर्ष' घोषित किया, तो कुछ इस्लामपरस्त गुटों ने इसे मजहबी–जेहादी चोला पहना दिया। यहाँ यह आधारभूत भूल बहुत सोच–समझकर की गई कि सभ्यता और धर्म को एकाकार कर दिया गया, जबकि वास्तविकता यह है कि सभ्यताएँ धार्मिक नैतिकताओं से जन्म लेने के बाद धर्म–केन्द्रित नहीं रह जाती। इस ज्वलंत तथ्य को कैसे भुलाया जा सकता है कि सभ्यताएँ धर्म की अवधारणा से पहले अस्तित्व में आ चुकी होती है।

आतंकवाद अब एक विचारधारा में तब्दील हो चुका है। यह अब क्षेत्रीय नहीं रह गया है। आज का आतंकवाद बहुत ही व्यापक, विविधता लिए एक बेहद जटिल घटनाक्रम है। यह मात्र हिंसक ही नहीं, इसमें मजहबी, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारण भी जुड़े हुए है। इसकी गहरी जड़े इस्लामी दुनिया में है। अलग–अलग देशों में इसे क्षेत्रीय या स्थानीय माना जाता था पर अब जेहादी इस्लामी कट्टरवादियों के स्थानीय रंग खत्म होते जा रहे हैं और उसका वैश्विक स्वरूप शक्ल लेता जा रहा है। अब उसमें भेद करना उचित नहीं है। जितनी भी आतंकवादी घटनाएँ हो रही है, वे एक–दूसरे की पूरक हैं और इस्लामी जेहाद की वैश्विक विचारधारा को पुख्ता करती हैं लेकिन इसका हिंसक बर्बर दंश स्थानीय लोग ही सहन करते हैं और अपनी जान से उसकी कीमत चुकाते है। वे चाहे आतंकवाद से सहमत हो या असहमत।

इस्लामी आतंकवाद की कई परतें हैं, उनमें से इसके सांस्कृतिक प्राणतत्व को पहचानना हम बुद्धजीवियों का दायित्व है क्योंकि अमरीका के बुद्धजीवी समुदाय ने इसे 'सभ्यताओं के संघर्ष' का नाम दिया है यानी ईसाई और इस्लामी सभ्यता का संघर्ष। इन दो धर्मों के संघर्ष का इतिहास मध्ययुगीन सदियों से चला आ रहा है। जिसे अमेरिका ने पुर्नजीवित किया ताकि उसके नव औपनिवेशिक और आर्थिक स्वार्थों पर ध्यान केन्द्रित न हो और संघर्ष के सही कारणों पर पर्दा पड़ा रहे। कोई यह न कह सके कि अमेरिका मध्य–एशियाई और पश्चिम एशिया के अरब देशों पर खनिज पेट्रोल और प्राकृतिक गैसों के भंडारों पर कब्जा जमाना चाहता है। उन देशों और अन्य देशों में बसे मुसलमानों का मानना और कहना है कि अमेरिका दुरंगी नीति पर चल रहा है। उसका झगड़ा इस्लाम है, नहीं तो उसने आज तक अफगानिस्तान और इराक की तरह उत्तर कोरिया जैसे परमाणु शक्ति वाले सशक्त देश पर हमला क्यों नहीं किया? वह इसलिए कि वह वह इस्लामपरस्त देश नहीं है। वे मुसलमान जो इस्लामी आतंकवाद से सहमत नहीं है, वे भी अमेरिका की दुरंगी नीति से नाराज है।

संदर्भ :

1. कौशिक, पी0 डी0 : अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ0 सं0 – 17
2. कुमार, महेन्द्र : अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सैद्धान्तिक पक्ष, पब्लिशर्स शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा पृ0 सं0 – 304
3. पामर एवं पार्किन्स : इण्टरनेशनल रिलेशन, पब्लिशर्स साइनटिफिक बुक एजेन्सी, कोलकाता, तृतीय संस्करण, पृ0 सं – 84
4. मोडेलेस्की : ए0 थियरी ऑफ फॉरेन पालिसी, लन्दन, 1962 पृ0 सं0 – 67

5. कुमार, महेन्द्र : अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सैद्धान्तिक पक्ष, पब्लिशर्स शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा पृ0 सं0 – 298
6. खन्ना, बी0 एन0 और अरोड़ा, लिपाक्षी : भारत की विदेशनीति, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 2008 पृ0 सं0 – 4
7. खन्ना, बी0 एन0 और अरोड़ा, लिपाक्षी : भारत की विदेशनीति, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 2008 पृ0 सं0 – 1
8. ग्रॉस, फौलिक्स : फॉरेन पॉलिसी एनालिसिस, न्यूयॉर्क, 1956, पृ0 सं0 – 48
9. मॉर्गेन्थाऊ : पॉलिटिक्स अमांग नेशन, पब्लिशर्स एलफेड ए0 नाप्फ, न्यूयार्क, 1965, पृ0 स0 – 7
10. रेनॉल्डज, पी0 ए0 : एन इन्ट्रोडक्शन टू इण्टरनेशनल रिलेशन, लन्दन, 1980, पृ सं0 – 36
11. ओलर्चे, चार्ल्स एवं एशैद, अब्दुल : कॉनसेप्टस ऑफ इण्टरनेशनल पालिटिक्स, ऐग्लबुड फिलिक, 1963, पृ0 सं0 – 12 – 13
12. दत्त, वी0 पी0 : स्वतंत्र भारत की विदेश नीति, नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृ0 सं0 – 146

RESEARCH INNOVATOR